आयुर्वेद में दर्शनशास्त्र

बकोत्रा महेन्द्र एल.
माणेकवाडा प्रा. शाळा

१. पूर्वभूमिका :

महर्षि चरक, सुश्रुत एवं वाग्भद के अनुसार आयुर्वेद के मूल प्रवर्तक साक्षात् भगवान है। भगवान के द्वारा इन्द्र को, इन्द्र से भारद्वाज को और भारद्वाज से अन्य ऋषियों को आयुर्वेद की प्राप्ति हुई। इस प्रकार आयुर्वेद अपने आपमें सर्वाङ्ग सम्पूर्ण ईश्वरीय विज्ञान है। ब्रह्माजी के पूर्वमुख से ऋग्वेद और आयुर्वेद की अभिव्यक्ति मान्य है। अतएव आयुर्वेद को ऋग्वेदीय उपवेद माना गया हैं। यहा आयुर्वेद में दर्शनशास्त्र इस विषय पर अपना शोधपत्र आपके समक्ष प्रस्तुत करता है।

२. आर्युवेद में दर्शनशास्त्र :

वेदोंका तात्पर्य धर्म और ब्रह्म में संनिहित है। 'धर्म' य५ादिरुप होने से भाव अर्थात् अनुष्ठेय है। ब्रह्म सच्चिदानव्यस्वरुप होने से भूत अर्थात् सिद्ध है। आयुर्वेद उपवेद होने सं धर्म और ब्रह्ममूलक चिकित्सा पद्धति है। यह वैशेषिको के द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवायरुप षडविध भावपदार्थो को और नैयायिकों के प्रत्यक्ष, अनुमान, आगम और उपमानरुप चतुर्विध प्रमाणो को तथा वाद के चौवालीस प्रभेदों को एवं सांख्यो के त्रुगुणात्मक प्रधान और महत्, अहम्, मनदशविध इन्द्रिय तथा शब्द, स्पर्श, रुपरस, गन्धसंज्ञक, पंच तन्मात्राओकों एवं आकाश, वायु तेज, जल, पृथ्वीसंज्ञ पग्चमहाभूतरुप चतुर्विशति अचित् अनात्म-वस्तुओंको और अविक्रिय विज्ञानात्मा पुरुषसंज्ञाक तिद्वसंज्ञाक तिद्वस्तुको स्वीकार करनेवाली चिकित्सा पद्धति है।

३. वैशेषिक दर्शन का स्विकार :

वैशेषिक दर्शन के प्रणेता कणादमुनी है। यह दर्शन सात पदार्थों को मानता है। आयुर्वेद वैशेषिक दर्शन का स्विकार करता है। उल्लेख देखीए।

सर्वदा सर्वभावानां सामान्यं वृद्धिकारणम् ।
ह्रास्सहेतुर्विशेश्च प्रवृत्तिरुभयस्य तुं ॥

(च. सं. सूत्र. १/४४)

अर्थात् सदा सभी भावों की वृद्धि करनेवाला सामान्य होता है और ह्रास (कम करनेवाले) का कारण विशेष होता है। इस शास्त्र में दोनों की प्रवृत्ति की जाती है अर्थात् इन दोनोंकी प्रवृत्ति (क्रिया) से दोष, धातु एवं मलोंकी वृद्धि और ह्रास किया जाता है। उपरोक्त सूत्र से आयुर्वेद वैशेषिकदर्शन का स्विकार करता है। यह बात प्रतीत होती है।

४. सांख्यदर्शन का स्विकार

सांख्यदर्शन के मतानुसार पुरुष २४ तत्वो का है। इस बात की आयुर्वेद में स्विकार किया गया है। देखो

पुनश्च धातुभेदेन चतुर्विशतिकः स्मृतः ।

मनो दशेन्द्रियाण्यर्थाः प्रकृतिश्चाष्टधातुको ॥ (व.सं., श०स्था १/१७)

निरन्तर नावयवः कश्चित् सूक्ष्मस्य चात्मनः । (च.सं. सूत्र ११/१०)

अर्थात् पुरुष छातुमेद से २४ तत्वों का माना जाता है। ये २४ तत्व है मन, इन्द्रियाँ, अर्थ-शब्द-स्पर्श-रुप-रस तथा गन्ध और आठ धातुएँ। उपरोकत सूत्रांश से हमे यह प्रतित होता है की आयुर्वेद में सांख्यदर्शन का स्विकार किया गया है।

५. न्यायदर्शन का स्विकार

न्यायदर्शन में आत्मा देह से भिन्न है। जगत का कर्ता ईश्वर है। ऐसी बाते अनुमान प्रमाण से सिद्ध करता है आयुर्वेद में उसका स्विकार किया गया है।

निष्क्रियं च स्वतन्त्रं च वशिनं सर्वगं विभुम् ।
वदन्त्यात्मानमात्मज्ञाः क्षेत्रज्ञ साक्षिणं तथा ॥

(च.सं. शरीर स्था. १/५)

अर्थात् आत्मा को माननेवाले ज्ञानी पुरुष आत्मा को स्वतन्त्र, वशी, सर्वत्र जाननेवाला, व्यापक, क्षेत्रज्ञ (शरीर को भलीभाति समझनेवाला) है, ऐसा कहते है। उपरोकत सूत्र मे अनुमान प्रमाण द्वारा आत्मा को देहधारी से भिन्न कहा गया है।

६. वेदानीदर्शन का स्विकार

आयुर्वेद वैदिक प्रस्थान के अनुरुप धर्म-अर्थ-काम और मोक्षरुप पुरुषार्थ चतुष्टयको माननेवाली चिकित्सा पद्धति है। देखो

धर्मार्थकाममोक्षणामारोग्यं मूलमुतमम् ।
रोगास्तस्यपहर्तारः श्रेयसो जीवितस्य च ।

(च.सं. सूत्र १/१५/१६)

अर्थात् धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष का आरोग्य ही प्रधान कारण है। रोग उस सुखमय श्रेय और जीवन को अपहर्ता है। और आयुर्वेद में पग्चभूत, त्रिगुण और त्रिदोष का वेदानीसम्मत प्रतिपादन भी किया गया है।

'सर्व द्रव्यं पाग्चभौतिकम्' और
महाभूतानि स्वं वायुरग्निरायः क्षितिस्तथा ।

आदि वचनो के अनुसार सभी द्रव्यो की त्रिगुणमयता और पग्चभौतिकता का प्रतिपादन कर वात पित, कफरुप त्रिधातुसंज्ञक त्रिदोष के साम्य और शमन का पथ प्रशस्त किया है।

७. योगदर्शन का स्विकार

योगियों के अष्टाडगयोग और अविधाः अस्मिता, राग, द्वेष तथा अभिनिवेशसंज्ञक पग्चविध कलेश, शुकल-कृष्ण मिश्र संज्ञक, त्रिविध कर्म सुख-दुःख, मोह संज्ञक त्रिविध विपाक और मनीः करणनिष्ठ संस्कारसंज्ञक आश्यसे अपरामृष्ट पुरुषविशेषरुप सर्वेश्वर को स्वीकार करनेवाली चिकित्सा पद्धति आर्युवेद है। आर्युवेद योगदर्शन का भी स्विकार करता है। देखीए।

मोक्षो रजस्तमोडभावाद् बलवत्कर्मसंक्षयात्
वियोगः सर्वसंयोगैर पुनर्भव उच्यते ॥

अर्थात् रजोगुण और तमोगुण के अभाव हो जाने से तथा पुनर्भव में हेतुभूत कर्माका क्षय हो जाने से और दु:ख एवं दु:ख हेतुओं के सर्वविध संयोगो का वियोग मोक्षसंज्ञक अपुनर्भवरुप योग कहा जाता है।

दुसरा उल्लेख है की

योगे मोक्षे च सर्वासां वेदनानामवर्तनम् ।
मोक्षे निवृतिर्नि:शेषा योगो मोक्षप्रवर्तकः ॥
आत्मेन्दियमनोडर्थाना संनिकर्षात् प्रवर्तते ।
सुखदुः खमनारग्भाषुमस्थे मनसि स्थिरे ।
निवर्तते तदुभयं वशित्वं चोपजायते ।
सशरीस्य योगज्ञास्तं योगमृषयो विदुः ॥
आवेशश्चेतसो ज्ञानमर्थानां छन्दतः क्रिया ।
दृष्टिं श्रोत्रं स्मृतिः कान्तिरिष्टतश्चाप्यदर्शनम् ॥
इत्यम्टविधामारव्यातं योगिनां बलमेश्वरम् ।
शुद्धसत्वसमाधानात् तत् सर्वमुपजायते ॥

(च.सं. शरीरस्थान् - १३७-१४९)

अर्थात् योग और मोक्ष में सभी प्रकार की वेदनाओं की निवृत्ति की जाती है। मोक्ष होने पर वेदनाओं का समूल विनाश हो जाता है और योग द्वारा मानव मोक्षमार्ग में प्रवृत होता है। अतएव योग को मोक्षका प्रवर्तक कहा गया है। आत्मा का मनस, मनका इंन्द्रियो से और इन्द्रियो का अपने अपने शब्द स्पर्शादि विषयों से जब संयोग होता है, तब सुख तथा दु:ख की प्राप्ति होती है। इसके विपरीत जब आत्मामें मनस्थिर भाव से रहता है, तब सुख-दुख की निवृत्ति हो जाती है तथा शरीरधारी पुरुष वशी हो जाता है। योग को जाननेवाले महर्षि इस स्थिति को योग नाम से जानते है। दूसरे के शरीर में प्रवेश कर जाना, दूसरे के मनकी बात जान लेना, सभी प्रकार के विषयों को जान लेनेकी शक्ति, किसी भी कार्य में स्वच्छन्द होकर प्रवृत होने की क्षमता, दृष्टिकी विशेष शक्ति, श्रवण की विशेषशक्ति आदि इस प्रकार योगियों में होनेवाले बलके आठ भेद होते है। इनकी समुपलब्धि शुद्ध सत्वकी सुस्थिर प्रतिष्ठा से सम्भव है ।उपरोक्त सूत्रो से प्रतित होता है की आर्युवेद योगदर्शन को अति महत्वपूर्ण और उपयोगी मानने के साथ साथ उनका स्विकार भी करता है।

८. मूल्यांकन

उपरोक्त विवरण से यह प्रतित होता है की आयुर्वेद वैशेषिक न्याय, सांख्य, योग वेदान्त, इन सभी दर्शनो का स्विकार करता है और उनके विविध मतो का भी स्विकार करते है।